P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-3* November- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दी विज्ञापन से अभिभूत वर्तमान लोक जीवन

मधुबाला
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,
मद्रास

सारांश

विज्ञापन का क्षेत्र पूर्णतः व्यवसायिक है। आज हिन्दी विज्ञापन वर्तमान लोक जीवन का अहम् हिस्सा बन चुका है। सुबह आँख खुलते ही चाय की चुस्की के साथ अखबार में सबसे पहले दृष्टि विज्ञापन पर ही जाती है। हिन्दी में विज्ञापन 19वीं शताब्दी से शुरू हुआ। इस सदी तक खड़ी बोली हिन्दी अपना वास्तविक स्वरूप स्थापित करने के लिए निरन्तर संघर्षरत थी। विज्ञापनों का लक्ष्य ग्राहकों के अवचेतन मन पर अमिट छाप छोड़ना होता है तथा विज्ञापन इसमें पूर्णतः सफल भी हो जाते हैं।

मुख्य शब्द : व्यवसायिक, विज्ञापन, उपभोक्ता, संरचना।

प्रस्तावना

हिन्दी विज्ञापनों ने वर्तमान लोक जीवन को इस कदर अभिभूत कर दिया है कि उपभोक्ता जिस वस्तु के विषय में यह मान चुका होता है कि उसे इस वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है, विज्ञापन देखने के पश्चात् वही उपभोक्ता यह निश्चय कर बैठता है कि एक बार इसे प्रयोग करने में क्या बुराई हैं? आज विज्ञापन हमारे जीवन का अहम् हिस्सा बन चुका है। सुबह आँख खुलते ही चाय की चुस्की के साथ अखबार में सबसे पहले दृष्टि विज्ञापन पर ही जाती है। घर के बारह पैर रखते ही हम विज्ञापन की दुनियाँ में खो जाते हैं।

हाँलाकि विज्ञापन का क्षेत्र पूर्णतः व्यवसायिक है। किसी बात को यदि बार–बार दोहराया जाए, फिर चाहे वह झूठ ही क्यों न हो, वह सत्य प्रतीत होने लगती है यही धारणा विज्ञापनों का आधारभूत तत्त्व है। जहाँ तक उपभोक्ता वस्तुओं का सवाल है, विज्ञानों का लक्ष्य ग्राहकों के अवचेतन मन पर अमिट छाप छोड़ना होता है तथा विज्ञापन इसमें पूर्णतः सफल भी हो जाते हैं। विज्ञापन उपभोक्ता की जानकारी बढ़ाने का भी कार्य करते हैं। जैसे जब भी बाजार में कोई नई वस्तु आती है तो उसके रंग–रूप, संरचना व गुण आदि की जानकारी उपभोक्ता की विज्ञापन के माध्यम से ही मिलती है जो उपभोक्ता को सही व गलत की पहचान करने में भी सहायता करते हैं। अतः हिन्दी विज्ञापनों ने वर्तमान लोक जीवन में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

साहित्यावलोकन

प्रेमचंद पातंजलि–आधुनिक विज्ञापन–इस पुस्तक में बताया गया है कि आधुनिक युग में इलेक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया की नई–नई तकनीकें आने से विज्ञापन के माध्यमों में अपूर्व वृद्धि हुई है। अखबार से लेकर दीवार तक विज्ञापन का व्यापक क्षेत्र है। पुस्तकें, मैगजीन, फिल्में, गीत–संगीत के रिकॉर्ड, दूरदर्शन, वीडियों, टेप, रेडियों, जहाज, बस, ट्रेन, ट्रक, कार आदि के अतिरिक्त मनुष्य का शरीर भी विज्ञापन का माध्यम बन चुका है।

डॉ. रमेशचन्द्र त्रिपाठी व डॉ. पवन अग्रवाल, मीडिया लेखन–प्रस्तुत पुस्तक में बताया है कि आधुनिक युग में उत्पादों, संस्थाओं, प्रतिष्ठानों तथा विज्ञापनदाताओं के प्रति गुणात्मक सद्भाव, जनमत तथा विश्वास उत्पन्न करने में विज्ञापन का पर्याप्त महत्त्व बढ़ गया है।

डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र, मीडिया लेखन सिद्धान्त और व्यवहार–प्रस्तुत पुस्तक में बताया है कि औद्योगिक विकास तथा मुद्रण के प्रचार से विज्ञापन की प्रगति भी बहुत तीव्र हो गई है। आज पत्र–पत्रिकाएँ तथा श्रव्य–दृश्य उपकरणों जैसे पोस्टर, होर्डिंग, सिनेमा, दूरदर्शन, आकाशवाणी आदि के माध्यम से विज्ञापन ने विश्व स्तर पर लोकप्रियता अर्जित कर ली है।

सुषमा चतुर्वेदी, जनसंचार, एवं पत्रकारिता, इस पुस्तक में जनसंचार के माध्यमों जैसे –श्रव्यगत, विज्ञापन, दृश्यगत विज्ञापन एवं दृश्य–श्रव्यगत विज्ञापन आदि पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया हैं

अध्ययन का उद्देश्य

उत्पादन बढ़ने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुँचाया ही नहीं जाए बल्कि उसे उस वस्तु की

जानकारी भी दी जाय। वस्तुतः मनुष्य को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है व उन्हें तलाश ही लेता है। इसके ठीक विपरीत उसे जिसकी जरूरत नहीं होती वह उसके बारे में सुनकर अपना समय खराब नहीं करना चाहता। इस अर्थ में विज्ञापन वस्तुओं को ऐसे लोगों तक पहुँचाने का कार्य करता है जो यह मान चुके होते हैं कि उन वस्तुओं की उसे कोई जरूरत नहीं है। आशय यह है कि उत्पादित वस्तु को लोकप्रिय बनाने तथा उसकी आवश्यकता महसूस कराने का कार्य विज्ञापन करता है। विज्ञापन अपने छोटे से संरचना में बहुत कुछ समाये होते है वह बहुम कम बोलकर भी बहुत कुछ कह जाते हैं।

विज्ञापन व्यक्तिगत नहीं होता। इसका संबंध वस्तु से होता है और वस्तु का संबंध किसी औद्योगिक संस्था से होता है। वास्तव में व्यवसाय के क्षेत्र में उत्पादन को उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया को वितरण प्रणाली कहते है। इस वितरण प्रणाली ने आधुनिक युग में जनसंचार के माध्यमों को अपनाया है। औद्योगिक विकास तथा मुद्रण के प्रचार से विज्ञापन की प्रगति भी बहुत तीव्र हो गई है। आज पत्र–पत्रिकाएँ तथा श्रव्य–दृश्य उपकरणों जैसे पोस्टर होर्डिंग, सिनेमा, दूरदर्शन, आकाशवाणी आदि के माध्यम से विज्ञापन ने विश्व–स्तर पर लोकप्रियता अर्जित कर ली है। व्यवसाय जगत में आज विज्ञापन एक अनिवार्य अंग बन चुका है क्योंकि इस जगत में उत्पादन वितरण से संबंधित जो प्रतियोगिता प्रतिस्पर्धा और प्रतिबिंबिता है उस पर प्रचार द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती हैं।

यद्यपि भाषा मानव समुदाय के परस्पर सम्प्रेषण का प्रमुख साधन है। लेकिन विज्ञापन के क्षेत्र में यह केवल सम्प्रेषण का कार्य ही नहीं करती है वरन् उपभोक्ता को आकर्षित करने और रिझाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहीं आकर विज्ञापन की भाषा अपने अन्य भाषा रूपों से भिन्न हो जाती है। अपने स्वरूप में विशिष्ट हो जाती है।

विज्ञापन के एक लम्बे ऐतिहासिक चरण से गुजरने के पश्चात आधुनिक युग तक पहुँचते–पहुँचते इसके स्वरूप एवं भाषिक संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन आ चुका है। वर्तमान युग में पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा ने किसी भी उत्पादक के अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रखा है। अपने अस्तित्व को सुरक्षित बनाने और उसे निरन्तर सुदृढ़ करने का एक ही उपाय उसके सामने रहता है। वह है विज्ञापन। प्राचीन समय में विज्ञापन का यह काम ढिंढोरची आदि व्यक्तियों के द्वारा होता था। ये ढिंढोरची ढोल पीट–पीट कर लोगों को इक्ट्ठा करते थे और तब उन्हें वह सूचना देते थे जिसके लिए वे व्यक्ति इक्ट्ठे किए गए थे। आधुनिक तकनीक ने सूचना प्रदान करने की इस कला को लगभग मिटा डाला है। नई उन्नत तकनीकें अब घर बैठे ही सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध करा देती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देश में हिन्दी में विज्ञापन 19वीं शताब्दी से शुरू हुआ। इस सदी तक खड़ी बोली हिन्दी अपने स्थापित होने के लिए संघर्षरत थी। उसके अनेक शब्दों, रूपों में ब्रज छाई हुई थी। व्याकरण की दृष्टि से भी अभी हिन्दी अनगढ़ थी। उसे एकरूपता, शुद्धता एवं व्यवस्था प्रदान करने का कार्य आरम्भ ही हुआ था। 1875 ई. के 'भारत–मित्र' में प्रकाशित एक विज्ञापन से तत्कालीन विज्ञापन का स्वरूप उभर कर सामने आ जाएगा। ''पुराने बुखार की दवाई बहोत बढ़िया, बुखार वाले के बिगर खिलाए मालूम नहीं होगा, बोहत जल्दी निरोग होगा।'' विज्ञापन की यह हिन्दी देशज शब्दों से भरपूर है। इसमें अपेक्षित कोमलता, माधुर्य का भी अभाव है। व्याकरणिक व्यवस्था का भी ध्यान नहीं दिया गया। इसका एक महत्वपूर्ण दोष इसका संक्षिप्त न होना भी है।

उत्पादक ऐसी भाषा को प्रस्तुत करता है जो उपभोक्ता को सहज आकर्षित कर सके और उसके उत्पाद को खरीदने के लिए उपभोक्ता को बाध्य कर दे। उत्पादक विज्ञापनकर्ता जब अपने किसी उत्पाद का विज्ञापन तैयार करता है तो सर्वप्रथम उसके सामने प्रश्न रहता है कि प्रस्तुत उत्पाद के उपभोक्ता कौन–कौन से वर्ग हैं। इन वर्गो का सामाजिक स्तर एवं भाषिक संरचना कैसी है। विज्ञापन के निर्माण के पीछे ये तत्व कार्य करते है। उपभोक्ता की सामाजिक पृष्ठभूमि को सामने रखकर ही विज्ञापन की भाषा निर्मित की जाती है।

विज्ञापन का मुख्य प्रयोजन उत्पादन की बिक्री कराना है। इसके माध्यम से अधिकांश लोगों तक वस्तु या सेवा का नाम और उसकी उपयोगिता के बारे में बताया जाता है। वास्तव में विज्ञापन सेल्समैन का स्थान तो नहीं ले सकता किन्तु प्रचार–कार्य में विज्ञापनदाता की सहायता अवश्य कर सकता है। विज्ञापन से ग्राहक को वस्तु की उपयोगिता तथा लाभ के बारे में पहले ही जानकारी मिल जाती है। और यह भी ज्ञात हो जाता है कि कौन सी वस्तु बाजार में सुलभ है। इसके अतिरिक्त उसे आसानी से उसके गुणावगुणों का भी परिचय मिल जाता हैं। इससे उसे वस्तु को खरीदने के लिए निर्णय करने में कठिनाई नहीं होती।

आधुनिक युग में इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया की नई–नई तकनीकें आने से विज्ञापन के माध्यमों में अपूर्व वृद्धि हुई है। अखबार से लेकर दीवार तक विज्ञापन का व्यापक क्षेत्र है। पुस्तकें, मैगजीन, फिल्में, गीत–संगीत के रिकॉर्ड, दूरदर्शन, वीडियों, टेप, रेडियों, जहाज, बस, ट्रेन, ट्रक कार आदि के अलावा मनुष्य का शरीर भी विज्ञापन का माध्यम बन गया है। कभी वह पैंट–शर्ट पर किसी उत्पाद का विज्ञापन लगाकर उसका प्रचार करता है तो कभी–कभी बिल्कुल नग्न होकर अपने शरीर पर चित्रकारी करवा कर विज्ञापन का प्रसार करता है। इस व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में विज्ञापन ने मनुष्य–शरीर को भी सुरक्षित नहीं छोड़ा है। इससे विज्ञापन के महत्त्व का पता लगाया जा सकता है।

विज्ञापन का समय बहुत ही कम होता है अगर वह टी.वी. या रेडियों पर प्रसारित हो रहा है तो, ऐसे में जब विज्ञापन केवल दस सेकंड का हो तो उसकी भाषा जटिल–दुरुह होने सें उस विज्ञापन की सार्थकता नष्ट हो जाएगी। अतः प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया दोनों में ही विज्ञापन की भाषा में कठिन शब्दों का प्रयोग न हों। वाक्य छोटे हों। जो आम बोलचाल में प्रचलन में हों। मौखिक विज्ञापन की भाषा भी सहज समझने योग्य होनी चाहिए।

'खा ले नालायक' एक नमकीन का विज्ञापन कुछ इस तरह की भाषा से आरम्भ होता है। इस पर

सहज ही ध्यान आकृष्ट होता है कि क्या खाने के लिए कहा जा रहा है। उपभोक्ता सबसे पहले विज्ञापन की भाषा को ही पढ़ता है। उसके बाद वह उस वस्तु की ओर ध्यान देता है। अगर विज्ञापन की भाषा उसे आकर्षित नहीं कर पाती तो वस्तु की ओर तो उसका ध्यान जाएगा ही नहीं। विज्ञापन की भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए लोकप्रिय मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ समाज में प्रचलित प्रसिद्ध उपमा, रूपक आदि अलंकारों का आश्रय लेकर आकर्षक बनाया जा सकता है। आधुनिक विज्ञापनों में वह खूब जोर–शोर से हो रहा है।

किसी उत्पाद की भाषा की सफलता एक अन्य चीज पर भी निर्भर करती है। वह है उपभोक्ता को उस विज्ञापन की भाषा का स्मरण होना। भाषा ऐसी चुस्त, संक्षिप्त, सूत्रात्मक एवं प्रभावशाली हो कि वह उपभोक्ता के मन–मस्तिष्क पर एक अमिट प्रभाव छोड़ दे। उपभोक्ता के समक्ष अक्सर कठिनाई रहती है और ठीक भी है कि वह सैकड़ों विज्ञापनों की भीड़ में किस–किस की भाषा को ध्यान में रखे। ऐसा प्रतिस्पर्धा में वही विज्ञापन बाजी मार जाता है जिसकी भाषा सहज ग्राह्य एवं प्रभावशाली होगी। जैसे –पहली मुलाकात बाघ बकरी के साथ। (बाघ–बकरी चाय)

पठन–पाठन की सुविधा अर्थात् पठनीयता से तात्पर्य है कि विज्ञापन की भाषा को प्रत्येक आयु एवं वर्ग का व्यक्ति पढ़ सके। इसके लिए विज्ञापनदाता को यह कोशिश करनी चाहिए कि विज्ञापन की भाषा जन–सामान्य द्वारा व्यवहार में प्रयुक्त जनभाषा हो। उसमें प्रत्येक वर्ग और समुदाय के प्रचलित शब्द समाहित हों। शब्द चयन उपभोक्ता के आर्थिक–सामाजिक जीवन स्तर के अनुरूप हों। जैसः–

जहाँ दिखे मारियो, अपना समझ के खा लियो।
(मारियो रस)

विज्ञापन की भाषा में प्रभावोत्पादकता का विशिष्ट गुण होना अनिवार्य है। कई बार ऐसा होता है कि उपभोक्ता एक बार विज्ञापन की भाषा पढ़–सुनकर दोबारा उस पर ध्यान नहीं देता। विज्ञापन की भाषा में ऐसी क्षमता का होना अनिवार्य है कि वह पुनः उपभोक्ता का ध्यानाकर्षित कर ले। दोबारा ध्यान आकर्षित होने वाली यही प्रवृत्ति उसे उत्पाद के क्रय की ओर ले जाती है। उसमें वह उत्पाद प्राप्त करने की लालसा पैदा करती है। विज्ञापन में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए विज्ञापनकर्ता समाज में प्रचलित मुहावरों, कहावतों के अतिरिक्त प्रसिद्ध फिल्मों के महत्वपूर्ण संवादों का भी आश्रय लेता है। जैसेः–

पेट सफा, हर रोग दफा।

विज्ञापन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य उपभोक्ता को उत्पाद क्रय करने के लिए प्रेरित करना भी है। किसी वस्तु के विज्ञापन की भाषा पर ही यह निर्भर करता है कि वह बाजार में प्रस्तुत अपने जैसे अन्य उत्पादों से कैसे अधिक बिक्री करवा सकती है। क्योंकि बाजार का चरित्र अपने आप अत्यन्त जटिल होता है और उसका व्यवहार प्रतिस्पर्धात्मक होता है। ऐसी स्थिति में विज्ञापनदाता के समक्ष विज्ञापन देकर अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाना निश्चय ही चुनौती का कार्य होता हैं। ऐसी स्थिति में वह बिक्री बढ़ानें के लिए तरह–तरह के उपकरणों का आश्रय लेता है। विज्ञापन की विषय–वस्तु, भाषा–शैली में परिवर्तन भी इन्हीं में से एक है। शब्द–चयन, पद–रचना, वाक्य–विन्यास नए ढंग से प्रस्तुत करता है। आज्ञार्थक, विस्मयबोधक, प्रश्नात्मक गुणवत्ताबोधक वाक्यावली, आदि के माध्यम से वह उपभोक्ता को वस्तु क्रय करने की ओर प्रेरित करता है। यथाः–

ये कोई कास्मेटिक नहीं, आयुर्वेदिक औषधि है। (रूपमन्त्रा)

विज्ञापन की भाषा एक अत्यन्त लघु फिल्म की भांति होती है। उसमें कई दृश्य होते है।। इन दृश्यों में विज्ञापित वस्तु को लेकर कुछ स्थितियाँ गढ़ी जाती हैं। जिससे इसमें अभिनेयता की अनिवार्यता होती है। अभिनेयता में शब्दों के उच्चारण में उतार–चढ़ाव, लटक–झटके आदि से विज्ञापन की भाषा सटीक प्रभाव उत्पन्न कर पाने में सफल होती है। संवादों में विज्ञापित वस्तु पर विशेष जोर दिया जाता है। नाटकीयता का यह पुट इलेक्ट्रानिक मीडिया पर दिखाए जाने वाले विज्ञापनों में अधिक रहता है। लिखित विज्ञापनों में नाटकीयता की सम्भावना कम होती है। यथाः

खाये जाओ, खाये जाओ, यूनाईटेड के गुण गाये जाओ।

विज्ञापनकर्ता की यह पूरी कोशिश रहती है कि विज्ञापन की भाषा पूरी तरह पाठक/उपभोक्ता वर्ग को विश्वसनीय लगे। उपभोक्ता को यह नहीं महसूस हो कि यह अतिश्योक्ति की बात है और ऐसा नही होता हैं विज्ञापनकर्ता को अपने उत्पाद के वास्तविक गुणों का वर्णन ही विज्ञापन की भाषा में देना चाहिए। विज्ञापनदाता को भाषा के सामान्य प्रयोग की अपेक्षा भाषा में विशिष्ट प्रयोग पर बल देना चाहिए। विज्ञापन की भाषा में काल्पनिकता और अतिरंजना से बचना चाहिए। इससे उपभोक्ता का विश्वास उत्पाद पर नही जम पाता। यथाः पहले इस्तेमाल करें, फिर विश्वास करें।

विज्ञापन के गुणों की व्याख्या करने में मुद्रणलिपिकर्ता प्रायः स्वतन्त्र होता है। भाषा के व्याकरण व नियमों की बहुत अधिक चिन्ता नहीं करता। उसके समक्ष अपना उद्देश्य रहता है उत्पाद की बिक्री का। इसके लिए वह शब्द, पद, पदबंध, वाक्य व्याकरण आदि किसी भी प्रकार की व्यवस्था को नकार कर अपने विज्ञापन की भाषा के लिए सर्वाधिक अनुकूल व लोकप्रिय भाषा शैली का सहारा ले सकता है। वह एक वाक्य में अनेकों अंग्रेजी शब्द रख सकता है। वाक्य का आरम्भ अटपटे, व्याकरण विरूद्ध ढंग से कर सकता है। वस्तुत मुद्रण लिपिकर्ता वाक्य–विन्यास और रूप–विन्यास में पूर्णतः स्वतन्त्र होता है यथाः

कुछ अलग–सी फैमिली वाली फिलिंग
(फोर्ड कार)

विज्ञापन की भाषा काफी हद तक संगीत, लय, तुक से सम्बद्ध होती है। यहीं से उसमें कविता के गुण समाविष्ट होने लगते हैं। विज्ञापन की इस काव्यात्मक भाषा का रूप गेय होता है इसी कारण यह अधिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली होती है और शीघ्र लोकप्रिय भी। यथाः कहीं ओर क्यों जाना, जब फिल्पकार्ट है ना।

जीवन्तता से तात्पर्य है कुछ नयापन जो आकर्षक हो। विज्ञापन की भाषा में इसका विशेष महत्व है। क्योंकि परम्पराबद्ध, यांत्रिक और व्याकरण सम्मत भाषा विज्ञापन की भाषा को उतना रोचक, आकर्षक नहीं बना पाती जितनी कि भाषा के साथ प्रयोग करने की प्रवृत्ति। विज्ञापन की भाषा में भाषा के प्रति सृजनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और प्रयोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना चाहिए। क्योंकि आधुनिक पीढ़ी पुराने शब्दों के नए चमत्कारी प्रयोग में अधिक खुश रहती है। अतः व्याकरण संरचना में पुराने शब्दों में चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास विज्ञापनदाता को करना चाहिए। विज्ञापन की जीवन्त–भाषा ही उपभोक्ता को उत्पाद खरीदने को प्रेरित करती है। यथाः

मिलावट से दूर, स्वाद व सेहत से भरपूर (पंतजलि मसाले)

दिन–प्रतिदिन बाजार में नए नए उत्पाद प्रविष्टि पाते है।। इन नए–नए उत्पादों के लिए भाषा को समय एवं अवसरानुकूल नया मुहावरा तलाश करना अनिवार्य हो जाता है। परम्परागत शब्दों में नए उत्पाद को अभिव्यक्ति देने की क्षमता कम ही होती है। इसलिए नए–नए उत्पाद की भाषा के तेवर परम्परागत भाषा से अलग होते हैं। उसमें नए–नए अर्थों को अभिव्यक्त करने की क्षमता निहित होती है। उसका नया मुहावरा होता है। जो समय की नब्ज को पहचानता है। इन्हीं विशेषताओं के समावेश से विज्ञापन की भाषा सजीव एवं जीवंत बन जाती है और अपेक्षित प्रभाव छोड़ने में सफल रहती है।

विज्ञापन की भाषा में लम्बे व्याख्यान के लिए अवकाश नहीं रहता। न ही वहाँ लम्बे–लम्बे विवरण अपेक्षित होते है।। समय, श्रम, धन और प्रभाव आदि सभी दृष्टियों से विज्ञापन की विस्तृत भाषा हानिकारक होती है। विज्ञापन की भाषा आरम्भ से लक्ष्योन्मुखी होनी चाहिए। अपने आकार में वह संक्षिप्त एवं सटीक होनी चाहिए। शब्द–चयन ऐसा ही हो कि कम से कम स्थान में अधिक से अधिक भाव की प्रभावशाली व्यंजना कर सके।

विज्ञापन की भाषा की उपरोक्त सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं, जिनका विवरण अनिवार्य है।

विज्ञापन की भाषा का सम्बन्ध अनुवाद से भी है सरकारी क्षेत्र में तो इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। स्त्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में जब किसी विज्ञापन का रूपान्तर किया जाता है। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय प्रायः अनुवाद की भाषा वही नहीं रह जाती जो मूल अंग्रेजी में थी क्योंकि अंग्रेजी और हिन्दी की प्रकृति अलग–अलग है। विज्ञापन की भाषा के अनुवाद में अक्सर यह समस्या आती है ओर अनूदित भाषा में विज्ञापन की भाषा प्रायः दुरुह, अनगढ़ और अनाकर्षक हो जाती है। अनूदित विज्ञापन की यह हिन्दी, हिन्दी भाषा की प्रकृति को क्षतिग्रस्त करती है। वस्तुतः अनुवाद हिन्दी की मूल प्रकृति के अनुकूल ही करना चाहिए और इसमें बोलचाल की हिन्दी का प्रयोग ही अधिकतर होना चाहिए। अलंकार प्रयोग से किसी भी भाषा की छटा में निखार आ जाता है। विज्ञापन की हिन्दी भी आलंकारिक प्रयोग से अछूती नहीं है। अलंकार प्रयोग में संगीत और लय में वृद्धि होती है। जिससे विज्ञापन ओर भी प्रभावशाली बन जाता है।

दूध–सी सफेदी निरमा से आये। निरमा, निरमा वाशिंग पाउडर।

विज्ञापन की भाषा में 'असली', 'शुद्ध' और टिकाऊ' नामक शब्दों पर बड़ा जोर दिया जाता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इसे विशेष तौर पर इस्तेमाल करती हैं जिससे लगता है कि हिन्दुस्तान में सब कुछ नकली, अशुद्ध और जीर्ण–शीर्ण है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यह केवल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का दुष्प्रचार है।

निष्कर्ष

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी विज्ञापन की भाषा, विज्ञापन की शैली आदि कुल मिलाकर वर्तमान लोक जीवन को अभिभूत करने में पूर्णतः सक्षम है। यही कारण है कि आमतौर पर विज्ञापनों की भाषा में आम बोलचाल की भाषा शैली ही अपनाई जाती है। हिन्दी विज्ञापन एक लम्बे ऐतिहासिक चरण से गुजरने के पश्चात आधुनिक युग तक पहुँचते–पहुँचते इसके स्वरूप एवं भाषिक संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन आ चुके हैं। हिन्दी वास्तव में एक ऐसी भाषा है जो बहुत कुछ पचाने की क्षमता रखती है। इसका भविष्य अत्यन्त उज्जवल एवं हृदय उदार है। इसमें समय–समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ओमकार, टेलीविजन पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2002*
2. *सुषमा चतुर्वेदी, जनसंचार एवं पत्रकारिता, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, तृतीय संस्करण, 2008*
3. *अशोक मलिक, सूचना प्रौद्योगिकी एवं पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2002*
4. *डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र, मीडिया लेखन सिद्धान्त और व्यवहार, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2003*
5. *डॉ. रमेशचन्द्र त्रिपाठी व डॉ. पवन अग्रवाल, (संपादक),मीडिया लेखन,भारतप्रकाशन,लखनऊ, 2003*
6. *प्रेमचंद पातंजली – आधुनिक विज्ञापन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997*
7. *डॉ.तारेश भाटिया, आधुनिक विज्ञापन और जनसम्पर्क, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पुर्नमुद्रण– 2004*
8. *विज्ञापन का मानव जीवन पर प्रभाव, https://www.google.co.in July 2016*
9. *विज्ञापन का महत्त्व, essaykiduniya.in>tag>vigyapan-ka-inn Oct. 2017*
10. *डा. राजेन्द्र मिश्र व ईशिता मिश्र, दृश्य–श्रव्य माध्यम लेखन,तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004*
11. *विज्ञापन और हमारा जीवन,evirtualgurn.com>hindi-essay-on.vigapan, Jun 2016*
12. *राधेश्याम शर्मा (सम्पादक), जनसंचार, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, प्रथम संस्करण, 2010*
13. *विज्ञापन के उपयोग व महत्व, evirtualgurn.com>hindi-essay-on.vigapan,July 2017*